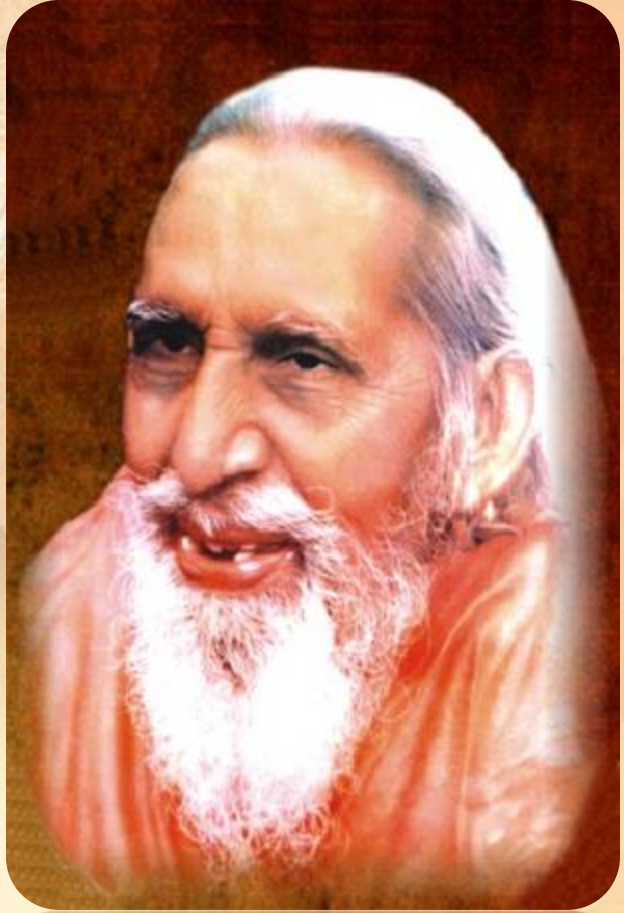


सन्त सद्गुरु महर्षि मेंहीं परमहंस जी महाराज

सन्त की सुदीर्घ परम्परा : भारत की संस्कृति ऋषियों और सन्तों की संस्कृति रही है। यहाँ समय-समय पर व्यास, वाल्मीकि, शुकदेव, नारद, याज्ञवल्क्य, जनक, वशिष्ठ, दधीचि, बुद्ध, महावीर, शंकर रामानन्द, नानक, कबीर, सूर, तुलसी, विवेकानंद, रामतीर्थ आदि-जैसे सन्त-मनीषी अवतरित होते ही रहे हैं। इन्हीं ऋषियों और सन्तों की दीर्घकालीन अविच्छिन्न परम्परा की एक अद्भुत और गौरवमीय कड़ी के रूप में अवतरित हुए थे हमारे परम पूज्य आराध्यदेव सन्त सद्गुरु महर्षि मेंहीं परमहंसजी महाराज।

माता-पिता, जन्म और बाल्यवस्था : सद्गुरु महर्षि मेंहीं परमहंस जी महाराज का अवतरण विक्रम संवत् १६४२ के वैशाख शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के उदाकिशुनगंज थाने के खोखशी-श्याम (मझुआ) नामक ग्राम में अपने नाना के यहाँ हुआ था। जन्म से ही इनके सिर में सात जटाएँ थीं, इन्हें प्रतिदिन कंघी से सुलझाने पर भी दूसरे दिन प्रातः काल वे संतों जटाएँ यथावत् मिल जाती थीं। लोगों ने समझा कि अवश्य ही किसी योगी-महात्मा का प्रादुर्भाव हुआ है। ज्योतिषी ने इनका जन्म-राशि का नाम **रामानुग्रहलाल दास** रखा। बाद में इनके पिता के चाचा श्री भरतलाल दासजी ने इनका नाम बदलकर **‘मेंहीं लाल’** रख दिया। कालान्तर में इनके अन्तिम सद्गुरुदेव परम सन्त बाबा देवी साहब ने भी इनके इस नाम की सार्थकता का सहर्ष समर्थन किया।

महर्षिजी का पितृ गृह पूर्णियाँ जिलान्तर्गत बनमखी थाने के सिकलीगढ़ धरहरा नामक ग्राम में अवस्थित है। मैथिली कर्ण कायस्थ कुलोत्पन्न इनके पिताश्री बबुजनलाल दास जी यद्यपि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थे, तथापि शौकसे वर्षों तक बनैली राज के एक कर्मचारी रहे। जब महर्षि को इनके पिता और इनकी बड़ी बहन झूलन दायजी ने इतने स्नेह और सुख-सुविधापूर्ण वातावरण में पालित-पोषित किया कि इन्हें माता का अभाव कभी नहीं खटका।



शिक्षा और आध्यात्मिक प्रवृत्ति - पाँच वर्ष की अवस्था में मुण्डन संस्कार होने के बाद अपने गाँव की ही पाठशाला में इनकी प्रारम्भिक शिक्षा शुरू हुई, जिसमें इन्होंने कैथी लिपि के साथ-साथ देवनागरी लिपि भी सिखी।

प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके इन्होंने 99 वर्ष की अवस्था में पूर्णिया जिला स्कूल में पुराने अष्टम वर्ग में अपना नाम लिखवाया। यहाँ उर्दू, फारसी और अंग्रेजी के कक्षा की पाठ्य पुस्तकें पढ़ने के साथ-साथ पूर्व आध्यात्मिक संस्कार से प्रेरित होकर रामचरितमानस, महाभारत, सुखसागर आदि धर्मग्रन्थों का भी अवलोकन करते और शिव को इष्ट मानकर उन्हें जल चढ़ाया करते। इसी अवधि सन् १९०६ ई० में इन्होंने जोतरामराय (जिला पूर्णियाँ) के एक दरियापंथी साधु सन्त श्री रामानन्द जी से मानस जप, मानस ध्यान और खुले नेत्रों से किये जानेवाले त्राटक की दीक्षा ले ली और नियमित रूप से अभ्यास भी करने लगे। योग-साधना की और बढ़ती हुई अभिरूचि के कारण अब ये पाठ्य पुस्तकों की और से उदासीन होने लगे और मन-ही-मन साधु-सन्तों की संगति के अभिलाषी हो उठे।

प्रबल वैराग्य : १९०४ ई० में ३ जुलाई से आरम्भ हुई मैट्रिक की परीक्षा के अँग्रेजी प्रश्न-पत्र में 'Builder' नामक कविता की जिन प्रारम्भिक चार पंक्तियों उद्धृत करके उनकी व्याख्या करने का निर्देश किया गया था, वे इस प्रकार थीं:

For the structure that we raise
Time with material's field
Our today's and yeasterday's
Are the blocks with which we build.

इन चार पंक्तियों को उद्धृत करके इनकी व्याख्या लिखते-लिखते इनमें वैराग्य की भावन इतनी प्रबल हो गई कि इन्होंने अन्त में रामचरितमानस की यह चौपाई 'देह धरे कर यहि फल भाई। भजिय राम सब काम बिहाई।' लिखकर परीक्षा-भवन का परित्यागकर दिया और यहीं इनकी स्कूली शिक्षा का सदा के लिए अन्त हो गया। इनके वैराग्य-उद्दीपन का आधार बना अँग्रेजी का यह दूसरा वाक्य 'All men must die.' जिसे इन्होंने बचपन की प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तक में पढ़ा था और जो इनके मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंधता रहता था।

सच्चे गुरु की तलाश: इन्होंने धर्मग्रन्थों में पढ़ा था कि मानव-जीवन में ही है। इसलिए इन्होंने आजीवन ब्रह्मचारी रहकर ईश्वर-भक्ति में अपना समस्त जीवन बिता देने का संकल्प लिया। आरम्भ में इन्होंने अपने गुरु स्वामी श्री रामानन्दजी की कुटिया पर रहकर निष्ठापूर्वक उनकी सेवा की, किन्तु जिज्ञासाएँ शान्त नहीं हुई। इसलिए एक सच्चे और पूर्ण गुरु की खोज में ये निकल पड़े। इसी क्रम में इन्होंने भारत के अनेक तीर्थों की यात्राएं की, परन्तु कहीं भी इनके चित्त को समाधान नहीं मिला। अन्त में इन्हें जब जोतरामराय-निवासी बाबू श्रीधीरजलाल जी गुप्त द्वारा मुरादाबाद - निवासी परम संत बाबा देवी साहब और उनकी सन्तमत-साधना-सम्बन्धी जानकारी मिली, जब इनके हृदय में सच्चे गुरु के मिल जाने की आशा बँध गई। बड़ी आतुरता से इन्होंने सन् १९०६ ई० में बाबा देवी साहब द्वारा निर्दिष्ट मार्ग, 'दृष्टियोग' की विधि भागलपुर नगर में मायागंज-निवासी बाबू श्री राजेन्द्रनाथ सिंह जी से प्राप्त की, तो इन्हे बड़ा सहारा मिला। उसी वर्ष विजयादशमी के शुभ अवसर पर श्री राजेन्द्रनाथ सिंह जी ने भागलपुर में ही बाबा देवी साहब से इनकी भेंट करवा दी और इनका हाथ सद्गुरु देव के हाथों में दे दिया और बोले की मैं आपका गुरु नहीं,

बाबा साहबही आपके गुरु हैं। मैं तो उनका आदेशपालक हूँ। बाबा देवी साहब जैसे महान् सन्त सद्गुरु को पाकर ये निहाल हो गये। उनके दर्शन और प्रवचन से इन्हें बड़ी शान्ति मिली और तृप्ति का बोध हुआ।

स्वावलम्बी जीवन : कमाने की झंझट से मुक्त रहकर एकमात्र मधुकरी वृत्ति से जीवन-निर्वाह करने वाले इन युवा संन्यासी को बाबा देवी साहब ने परिश्रमपूर्वक अपनी कमाई के जीवन-यापन का आदेश दिया और कहा कि यदि सौ वर्ष तक जीवित रहोगे तो क्या खाओगे? एक सच्चा शिष्य गुरु की आज्ञा की अवहेलना कैसे करता? लेकिन महर्षि जी का कथन है कि हमारे देश में बहुत तरह के सन्त हुए हैं, उनमें से बहुतों ने भिक्षा माँगी, बहुतों ने नहीं भी माँगी, किन्तु थे सभी सन्त। गौ का बच्चा अपने तई दूध पीता है। उसी प्रकार पेट का धन्धा करना सभी जानते हैं, लेकिन स्वावलम्बी होने से निश्चिन्तता रहती है। मुख्य बात भजन है। जो भजन-ध्यान नहीं करता और केवल पेट के धन्धों में ही लगा रहता है, वह बैल की तरह जीवनयापन करता है। वह झूठी प्रतिष्ठा और मान-बड़ाई तथा माया के जाल में पड़कर जीवन बर्बाद करता है। बाबा देवी साहब का कथन है कि जवानी में अर्थात् ४० वर्ष की अवस्था में इतना ईमानदारी से धन संग्रह कर लो कि बुढ़ापे में कमाने की आवश्यकता न पड़े। भजन करने हेतु घर का परित्यागकर एकान्त साधना करो, जिससे जीवन का उद्देश्य पूरा हो। भगवान भिक्षा-वृत्ति को अपनी वंश-परम्परा बताते हैं (देखे पृष्ठ १२१, राजा शुद्धोदन की कथा, धम्मपद)। संन्यासी लोग जितना लेते हैं, उससे कई गुणा अधिक देश और समाज का उपकार करते हैं। (पूर्णिमाँ) और सिकलीगढ़ धरहरा में क्रमशः अध्यापन और कृषिकार्य किया।

गंभीर साधना और साक्षात्कार - सन् १९१२ ई० में बाबा देवी साहब ने स्वेच्छा से इन्हें शब्दयोग की विधि बतलाते हुए कहा कि अभी तुम दस वर्ष तक केवल दृष्टियोग का ही अभ्यास करते रहना। दृष्टियोग में पूर्ण हो जाने पर ही शब्दयोग का अभ्यास करना। शब्दयोग की क्रिया अभी मैंने तुम्हें इसलिए बतला दी की यह तुम्हारी जानकारी में रहे। सन् १९१८ ई० में सिकलीगढ़-धरहरा में इन्होंने जमीन के नीचे एक ध्यानकूप बनाया और उसमें लगातार तीन महीने तक एकान्त में रहकर तपस्यापूर्ण साधना की, जिसमें इनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया। सन् १९१९ ई० की १९ जनवरी को बाबा देवी साहब के परिनिवृत हो जाने के बाद इनके मन में इसी जीवन में मोक्ष प्राप्त कर लेने का प्रबल संवेग सतत उठता रहा। सन् १९३३-३४ ई० में इन्होंने पूर्ण तत्परता के साथ १८ महीने तक भागलपुर के कुप्पाघाट की गुफा में शब्दयोग की अत्यन्त गंभीर साधना की, फलस्वरूप ये आत्म-साक्षात्कार में सफल हो गये।

सन्तमत का प्रचार-प्रसार : अब इनका ध्यान सन्तमत-सत्संग के प्रचार-प्रसार की ओर विशेष रूप से गया। इन्होंने सत्संग की एक विशेष नियमावली तैयार की। फिर क्या था? अखिल भारतीय स्तर पर तीन दिनों के लिए और जिला स्तर पर दो दिनों के लिए निर्धारित तिथियों पर जगह-जगह वार्षिक अधिवेशन होने लगे। इनके अतिरिक्त प्रखण्ड स्तर पर एक दिन के लिए मासिक सत्संग का आयोजन होने लगा। कहीं-कहीं यथावसर सत्संग के साथ-साथ सामूहिक मास - ध्यान-साधना भी होने लगी। पुस्तकों के प्रचार का सबसे बड़ा माध्यम समझकर इन्होंने लेखन की ओर ध्यान दिया। ये अपनी साहित्यिक रचनाओं और प्रवचनों द्वारा यह सिद्ध करने लगे की सभी सन्तों के विचार मूलतः एक हैं और सन्तमत वेद, उपनिषद, गीता आदि ग्रन्थों के विचारों पर ही आधारित है। इन्होंने सन्तमत के सत्स्वरूप को उजागर किया। लोग इनके विचारों से अत्यन्त प्रभावित होते गये। आज भारत के विभिन्न राज्यों तथा विदेशों (नेपाल, जापान, रूस, अमेरिका, स्वीडेन आदि) में फैले हुए इनके शिष्यों की संख्या अगणित है।

सर्वविदित है कि धर्म-प्रचारकों को अपने जीवन में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। सद्गुरु महर्षि मेंहीं परमहंसजी महाराज को भी सन्तमत-सत्संग के प्रचार-प्रसार में अनेक चुनौतियों-कठिनाईयों का सामना करना पड़ा था। इन पर मनगढ़न्त दोषारोपण हुए, अनेक अफवाहों की आँधियाँ चलीं, मीरा की तरह छल से विष दिया गया, रात में फूस की कुटिया में अग्नि प्रज्वलित कर इन्हें जिन्दा जला देने की कोशिश की गई, तलवार से सिर कलम कर देने के लिए क्रुर हाथ उठाया गया और इन्हें विचलित करने के लिए आश्रम में डाका डालाया गया; परन्तु धरती की क्षमाशीलता, आकाश की अनन्तहृदयता, सागर की गम्भीरता, हिमालय की अटलता को धारण किये महर्षि जी प्रचार-मार्ग से कभी विचलित नहीं हुए। दिनों-दिन इनका व्यक्तित्व आग में तपाये गये सोने की तरह निखरता ही गया। इनके पवित्र यश की धवल चाँदनी फैलती ही गई। अन्ततः प्रबल विद्वेषी भी एक दिन इन्हीं की शरण में आये और सबों ने इनकी गुरुता स्वीकार की। इस प्रकार सारी आपदाओं को सहन करनते हुए इन्होंने सन्तमत का प्रचार-प्रसार किया।

महर्षिजी की साहित्यिक रचनाएँ एवं आश्रम व शिष्यगण : अखिल भारतीय सन्तमत-सत्संग की ओर से प्रकाशित होने वाली हिन्दी मासिक पत्रिका 'शान्ति-सन्देश लगभग ५० वर्ष से जन-जन में सन्तमत की सूक्ष्म विवेचना कर रही है, जिसके द्वारा ऋषियों, मुनियों, साधु-सन्तों, महात्माओं और विद्वानों के लोक हितकारी वचनों को जन-सुलभ कराने का महत्कार्य सम्पन्न हो रहा है। इसके अतिरिक्त महर्षि मेंहीं विरचित व संगृहीत १४ सारगर्भित पुस्तकों का प्रकाशन किया गया है। उनके नाम हैं:- १. सत्संग-योग (चारों भाग), २. वेद-दर्शनयोग, ३. विनय-पत्रिका-सार सटीक, ४. रामचरितमानस-सार सटीक, ५. श्रीगीता-योग-प्रकाश, ६. महर्षि मेंहीं - पदावली, ७. सन्तवाणी सटीक, ८. भावार्थ-सहित घटरामायण पदावली, ९. सत्संग-सुधा (प्रथम भाग), १०. सत्संग-सुधा (द्वितीय भाग) ११. महर्षि मेंहीं-वचनामृत (प्रथम भाग), १२. मोक्ष-दर्शन, १३. ज्ञानयोगयुक्त ईश्वर-भक्ति, १४. ईश्वर का स्वरूप और उसकी प्राप्ति, १५. महर्षि मेंहीं सत्संग सुधासागर। इन समस्त रचनाओं का गम्भीरता से अध्ययन करने पर अध्यात्म-ज्ञान की सही जानकारी प्राप्त हो जाती है।

महर्षि मेंहीं कभी-कभी अपने प्रवचनों में कहा करते थे कि "सन्तों का विचार मेरा प्राणधार है। मैं इस विचार में इतना दृढ़ हूँ की मुझे कोई डुला नहीं सकता। मेरी रचित पुस्तकें जो पढ़ेंगे, वे भी दृढ़ होंगे, ऐसा मेरा विचार है।" सम्पूर्ण भारत और विदेश मिलाकर आपके लाखों शिष्य होंगे, जो ईश्वर-भक्ति का भेद लेकर साधना कर रहे हैं। देश-भर में आपके द्वारा और आपके नाम पर संस्थापित लगभग ५०० आश्रम होंगे। संन्यासी, वैरागी शिष्य भी हजारों की संख्या में होंगे, जिनमें आचार्यों की संख्या १०० होगी। इनमें महर्षि सन्तसेवी परमहंस जी महाराज प्रधान शिष्य हैं। जिनको गुरुदेव प्रायः अपना मस्तिष्क कहा करते थे। संत महर्षि मेंहीं परमहंस जी महाराज ८ जून १९८६ ई० रविवार को जीवन के १०१ वर्ष पूरे करके इस संसार से महाप्रयाण कर गये। गुरुदेव हमारी आंखों से ओझल हुए, किन्तु हमें आश्वस्त कर गए कि "मैं मोक्ष नहीं चाहता हूँ, तुम लोगों के उद्धार के लिए पुनः आऊँगा।"